International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

भारत में भूमि क्षरण का गहरता संकट : कारण एवं निवारणः एक भौगोलिक अध्ययन

1. डॉ. राकेश पारीक, व्याख्याता आर. एल. सहरिया राजकीय पी. जी. महाविद्यालय, कालाडेरा (जयपुर)
2. नाथूलाल, भूगोल विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपुर ।

सांराशः

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की पचास प्रतिशत से भी ज्यादा भूमि विभिन्न कारणों से बंजर भूमि में परिवर्तित हो चुकी है जो देश के लिए एक गंभीर चुनौती पूर्ण समस्या है अतः कृषि पर आधाररित अर्थव्यवस्था की मजबूती तथा भूखमरी एवं कुपोषण से निजात के लिए उपजाऊ भूमि के संरक्षण के साथ साथ क्षरित भूमि का पुनरूत्थान आज की सबसे बडी आवश्यकता है। सिकुडते भूमि संसाधन आज देश के लिए एक गंभीर समस्या है। भूमि क्षरण का प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पडेगा जिससे न सिर्फ भूखमरी और कुपोषण जैसी समस्याओं में वृद्धि होगी अपितु कृषि पर आधारित देश की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पडेगा। अतः देश को भुखमरी और कुपोषण से बचाने के साथ साथ अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए उपजाऊ भूमि का संरक्षण एवं भूमि का पुनरूत्थान अति आवश्यक है भूमि संरक्षण के लिए पारम्परिक कृषि के स्थान पर संपोषित कृषि को अपनाना आज समय की सबसे बडी आवश्यकता है। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक मानव विविध विकसित प्रौद्योगिकी एवं प्राविधिकीय, तकनीकी विधि की सहायता से अति तीव्रता के साथ निरन्तर विकास की तरफ अग्रसर होता चला जा रहा है। लेकिन यह अति उन्नत वैज्ञानिक विकास सम्पूर्ण मानवता के समक्ष एक महान संकट के रूप में दृष्टिगत हो रहा है। क्योंकि वर्तमान युग में एक तरफ पर्यावरण प्रदूषण का भयावह संकट तथा भावी नाभिकीय युद्ध की बढती संभावना है। तो दूसरी तरफ तीव्र गति से बढती जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न भुखमरी, कुपोषण का दुरूह संकट। प्रकृति प्रदत्त विविध पर्यावरणीय दशाओं में व्यापक स्तर पर परिवर्तन के कारण धरातलीय ताप–वृद्धि, वर्षा में अनिश्चितता, भूमिगत जलस्तर का अधिक नीचे चला जाना, हिमनदों का पिघलना आदि अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही है। भूख से व्याकुल एवं कुपोषण से जर्जरित अशान्त मानव संसार में न तो शान्ति का सृजन कर सकता है। प्रस्तुत शोध में **भारत में भूमि क्षरण का गहरता संकट : कारण एवं निवारणः एक भौगोलिक अध्ययन** पर विचार उल्लेखित हुए है।

1.भूमिकाः

प्रकृति ने धरातल पर विधिताएं सृजित की है। भू–धरातल पर वर्षा, तापमान, मृदा स्वरूप, कृषि दशा, प्रक्रम अवस्था सर्वत्र एक समान रूप में नहीं है।, क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम हैं घरातलीय विभिन्नता एवं परिवर्तनशीलता प्रकृति की विशेषता है जिसके विश्लेषण में भूगोल वेत्ता सतत् प्रयत्नशील है। प्राकृतिक संसाधन मानव अस्तित्व का मूलाधार है, क्योंकि इन्हीं विविध प्राकृतिक संसाधनों से ही मानव की विविध आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले विविध तत्व एवं पदार्थ उत्पन्न होते है। वास्तव में इस अध्ययन की आवश्यकता विशेष रूप से तीव्रगति बढती जनसंख्या के कारण हुई। भूमि संसाधनों की अत्यल्पता एवं सीमितता के फलस्वरूप बढती हूई जनसंख्या के भरण–पोषण के कारण आवश्यकता प्रतीत हुई। विश्व स्तर पर भूमि उपयोग के अध्ययन एवं नियोजन की आवश्यकता दो मुख्य कारणों से अनुभव की गयी प्रथम देश के उत्पादन संसाधनों की तुलना में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि तथा द्वितीय – राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु भूमि संसाधन का अधिकाधिक मात्रा मे प्रयोग । इससे सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्न है–
1.धरातल के किस क्षेत्र की भूमि किस कारण से उपयोग के अन्तर्गत नहीं हैं?

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

2. भूमि का उपयोग किस तीव्रता के साथ किया जा रहा है?
3. उपयोग में प्रयुक्त की गयी भूमि किस प्रकार बढती हुई जनसंख्या के लिए भोजन एवं आवास की सुविध उपलब्ध कराने मे सहायक होती है।
4. कृषि उत्पादन एवं जनसंख्या वृद्धि में क्षेत्रीय असन्तुलन किस प्रकार का है उसका स्वरूप कैसा है?

इस प्रकार उपर्युक्त सभी प्रश्नों के समाधान हेतु भूमि संसाधन एवं जनसंख्या सन्तुलन के अध्ययन को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिला।

संसार की जनसंख्या चक्रीय गति से निरन्तर बढ रही है। यह प्रति 30–40 वर्षों में दोगुनी हो रही है। जिसके परिणामस्वरूप विविध समस्याएं उत्पन्न हो रही है। इसी तरह यदि भविष्य में भी जन्मदार में स्थिरता एवं मृत्युदर में गिरावट जारी रही तो सन् 2025 तक विश्व की जनसंख्या सन् 2000 के 610 करोड की तुलना में 862 करोड हो जायेगी। संसार के प्रायः सभी विकासशील राष्ट्रों में जनसंख्या वृद्धि पर प्रायः अधिकतम् हो रही है।

2.अध्ययन का उद्देश्यः

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य **भारत में भूमि क्षरण का गहरता संकट : कारण एवं निवारणः एक भौगोलिक अध्ययन** है। भूमि एक सीमित संसाधन हैं जो प्रकृति की ओर से मनुष्य के लिए निःशुल्क उपहार है। भूमि पर जब तक मानवीय क्रिया नहीं होती है। वह उत्पत्ति का एक निष्क्रिय साधन बनी रहती है। (मनुष्य की तीन प्रमुख नियामतें– रोटी कपडा और मकान के पूर्ति के लिये इस भूमि पर जो मानवीय प्रयास किया जाता है। उसे कृषि कहा जाता है।) भारत में कृषि को 'भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ की हड्डी' माना गया है।यह स्पष्ट है कि भारतीय अर्थव्यस्था में कृषि का स्थान सर्वोपरि है। भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल भू–भाग का 2.42 प्रतिशत है, जबकि यह विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। भारतीय भू–भाग के कुल क्षेत्रफल में से कुषि योग्य कुल भूमि का लगभग 69 प्रतिशत भाग पर खाद्यान्न फसलें तथा 31 प्रतिशत भाग पर नकद एवं व्यावसायिक फसलें उत्पादित की जाती है। भारत में प्रतिव्यक्ति कृषि योग्य भूमि लगभग 0.13 हेक्टेयर (2001) है, जो कि विश्व के अन्य विकसित देशों की तुलना में कम है। इसके साथ ही भारतीय कृषि जोतों का आकार अन्य विकसित देशों की तुलना में काफी कम है। इन्हीं तथ्यों के मध्यनजर प्रस्तुत अध्ययन का उद्येश्य रखा गया है।

3.शोध प्रविधि

भारत में भूमि क्षरण का गहरता संकट : कारण एवं निवारणः एक भौगोलिक अध्ययन ही प्रस्तुत शोध का **शोध प्रविधि** है।शोध प्रबन्ध हेतु प्रयुक्त आंकडों के एकत्रीकरण एवं विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्त्रोतों का सहारा लिया गया है।, जिसमें विभिन्न फसल एवं मौसम रिपोर्ट, उत्तर प्रदेश की विभिन्न जनगणना सार पुस्तिका, जनपद गजेटियर, सांख्यिकीय पत्रिकाएं प्रतापगढ जनपद की पंचवर्षीय जिला योजनाएं मिलान खसरा एवं जिन्सवार रिपोर्ट, जनपद की औधोगिक मार्गदर्शिका तथा जनपद सम्बन्धी प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त विषय एवं क्षेत्र से सम्बन्धित सामग्री जैसे शोध प्रबन्ध, शोध–पत्र, निबन्धों को विभिन्न पुस्तकालओं एवं शोध केन्द्रों पर जाकर अवलोकन किया गया है।

4.साहित्य समीक्षा

भौगोलिक अध्ययन में भूमि उपयोग शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सावर (1919) ने किया। जोन्स एवं फिन्च ने इस शब्द का पुनः प्रयोग 1925 में किया। भूमि उपयोग एवं उसके नियोजन का विस्तृत विश्लेषण

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

स्टैम्प ने (1930) तक बक (1937) के व्यापक सर्वेक्षण के बाद ही संभव हो सका। इन दोनों विद्वानों के व्यापक भूमि उपयोग सर्वेक्षण एवं अध्ययन के फलस्वरूप ही भूमि उपयोग के अध्ययन एवं नियोजन का वैज्ञानिक स्वरूप सामने आया वह भौगोलिक अध्ययन के एक अभिन्न रूप प्रतिष्ठित हो गया।

सन् 1960 के पश्चात् भूमि उपयोग के विविध पक्षों के ऐतिहासिक विकास क्रम में एक स्वर्णिम युग का शुभारम्भ हुआ। कोपाक (1964) द्वारा प्रकाशित "कृषि मानचित्रावली" भूमि उपयोग अध्ययन की एक महत्वपूर्ण श्रृंखला थी जो आधुनिक काल के आँकडों के बाहुल्य तथा उपलब्धि का प्रतीक है। तदुपरान्त बर्टन, राड्स मैकार्टो एवं हार्वे आदि विद्वानों ने प्रादेशिक उपागम के स्थान पर सामान्य विषय–वस्तु उपागम के माध्यम से भूमि उपयोग के विषय–वस्तु की रूपरेखा तैयार की। इसी अवधि में प्रतिदर्श तथा क्षेत्रीय अध्ययन पर विशेष बल दिया गया, जिसमें व्हेलर द्वारा प्रतिपादित नियम विशेष उल्लेखनीय है। सत्यपरक परिणाम हेतु भूमि उपयोग अध्ययन में सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग प्रारंभ हुआ। भूमि उपयोग के अनुकूलतम् स्वरूप के निर्धारण में "अनुरेखीय कार्यक्रम प्रतिमान" को अधिक प्रोत्साहन दिया गया, जिसमें बेवर, हैण्डरसन, कुरी हैगेट, कोरले, राजकृष्णन्, द्विवेदी, आदि ने प्रस्तुत विषय को समृद्ध बनाने हेतु अपने शोध–साहित्य के माध्यम से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण किया है।

विश्व के अनेक देशों की भाँति में भी उक्त अवधि में भूमि संसाधन उपयोग के विविध पक्षों से सम्बन्धित अनेकानेक शोध साहित्य का प्रकाशन हुआ है। अध्ययन के विकास का मूलाधार स्टैम्प द्वारा ग्रेट ब्रिटेन के सन्दर्भ में किया गया भूमि उपयोग का भौगोलिक कार्य था। चटर्जी (1945) ने सर्वप्रथम पश्चिमी बंगाल के "चौबीस परगना जनपद में भूमि उपयोग" नामक शोध – पत्र लिखकर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सार्थक प्रयास किया। इसके बाद राव (1947) द्वारा "गोदावरी क्षेत्र के भूमि उपयोग विश्लेषण" सम्बन्धी शोध–पत्र प्रकाशित हुआ। बिहार के कृषि भूगोल पर दयाल (1947) किया गया शोध काय्र विविध भौगोलिक कारकों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है। कालान्तर में मुहम्मद शफी (1961) ने भूमि उपयोग अध्ययन मे पूर्वी उत्तर प्रदेश का उदाहरण लेते हुए प्रतिदर्श तकनीक का प्रयोग किया । भारत के विस्तृत क्षेत्र के भूमि उपयोग अध्ययनों में गांगुली ने सन् 1953 ई. में ज्ञानपुर के समीप भुड़की गाँव का प्रतीक अध्ययन किया। डॉ0 राम उजागिर सिंह (1955) का सारनाथ के निकट पाँच गाँवों का भूमि उपयोग विशेष उल्लेखनीय है। विजयराम सिंह ने मिर्जापुर जनपद के समीपवर्ती क्षेत्र के भूमि उपयोग विश्लेषण में विभिन्न पक्षों का अध्ययन करके भूमि उपयोग के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है।

डॉ0 प्रेमशंकर तिवारी द्वारा प्रस्तुत कृषि मान चित्रावली एवं कृषि भूगोल इस दिशा में अत्यन्त ही सफल प्रयास है। भारत में सन् 1960 ई. के पश्चात् भूमि उपयोग के विविध पक्षों का गहन अध्ययन प्रारंभ हुआ जिसके अन्तर्गत कृषि उत्पादकता शस्य गहनता, शस्य साहचर्य , भूमि उपयोग दक्षता आदि से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण शोध–साहित्य प्रकाशित हुए।

विश्व में जनसंख्या अध्ययन का श्री गणेश कब हुआ यह कहना अत्यन्त प्राचीन है जितना मानव। जनसंख्या भूगोल को एक क्रमबद्ध विषय के रूप मान्यता दिलाने एवं अन्य विषयों के समकक्ष इसको प्रतिष्ठित करने का श्रेय अमेरिकी भूगोल वेत्ता जी0 टी0 ट्रिवार्थी को है जिन्होनें 30 मार्च 1953 का " एशोसियेशन ऑफ अमेरिका ज्योग्रैफर्स" के समक्ष अपने अध्यक्षीय भाषण में जनसंख्या भूगोल के लिए ठोस तार्किक एवं आधारभूत सिद्धान्त प्रस्तुत किया। 1954 के बी0ई0 जेम्स द्वारा प्रतिपादिक पुस्तक 'अमेरिकन ज्यौग्राफी इन्वेन्ट्री एण्ड प्रास्पेक्ट' में ट्रिवार्था के अध्यक्षीय भाषण छपने के साथ ही जनसंख्या भूगोल को एक सुदृढ आधार प्राप्त हुआ। जे0 आई0 क्लार्क ने 'पापुलेशन ज्योग्रैफी' में जनसंख्या भूगोल को परिभाषित करने के साथ ही उसके विषय क्षेत्र का विधिवत् परिभाषित करने के साथ ही उसके विषय क्षेत्र का विधिवत् परिसीमन किया। जिससे भूगोल वेत्ता जनसंख्या भूगोल के अध्ययन की ओर तीव्रगति से अग्रसर हुए। इसका मुख्य उदाहरण जेलिन्स्की द्वारा जनसंख्या भूगोल से सम्बन्धित पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। इनमें

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

मुख्य रूप से 1951 में मांकहाउस, 1952 में किंग्स्ले, 1958 में जी0 डब्लू0 बर्कले तथा इ0 ए0 एकरमैन 1960 में टी0 एल0 स्मिथ, क्लार्क एवं थामसन 1960 में, जेलेन्स्की एवं व्यूजो गार्नियर, 1968 में विल्सन, 1969 ट्रिवार्था एवं ए0 मेलेजीन, 1970 में जेलिन्स्की, कोरेन्स्की तथा प्रोथरे डेस्को, रोशे तथास्मेल, 1971 क्लार्क, 1972 में ट्रिवार्था, 1973 में हान्सेन तथा कोसेन्स्की एवं पिटी, 1975 में कोन्सेन्स्की तथा प्रोथरो, 1976 में हेननी 1977 में ट्रिवार्था, 1978 में वैलेण्टी तथा 1981 में जोन्स के कार्य प्रमुख हैं जनसंख्या भूगोल का क्रमबद्ध अध्ययन भारत में सर्वप्रथम 1956 में जी0 टी0 ट्रिवार्था के निर्देशन में 'घोसल' के शोध प्रबन्ध से प्रारम्भ होता है। घोसल के निर्देशन में पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ में 1968, 1969, तथा 1970 में क्रमशः कृष्णन्, चन्दाना तथा मेहता ने अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। 'उत्तर प्रदेश जनसंख्या वृद्धि का सुझाव ' आर0 यल0 सिंह द्वारा 1974 में विश्लेषित किया गया। इसके अतिरिक्त जनसंख्या भूगोल पर अधिकाधिक पुस्तकें शोध–प्रबन्ध एवं शोध पत्र प्रस्तुत किये गये जिनमें मुख्य रूप से चतुर्भुज मामोरिया 1961 द्वारा " द इण्डियज इनवायरमेण्ट : हैण्डबुक ऑफ पापुलेशन ज्योग्रैफी" बी0 जे0 भट्टाचार्या 1976 द्वारा 'पापुलेशन इन इण्डिया' एस0 एम0 अग्रवाल 1977 द्वारा 'इण्डियाज पापुलेशन प्राब्लम्स, हंसराज 1978 द्वारा 'फण्डामेण्टल आफ डिमोग्रैफी – पापुलेशन स्टडीज् विथ स्पेशल रेफरेन्स टू इण्डिया'' आर0सी0 चन्दाना 1980 द्वारा '' इण्ट्रोडक्सन टू पापुलेशन ज्योग्रैफी एवं ए0 भट्टाचार्या 1978 द्वारा पापुलेशन ज्योग्रैफी ऑफ इण्डिया' विशेष उल्लेखनीय है।

5.शोध अध्ययन द्वारा प्राप्त प्रतिफल

5.1भारत में भूमि क्षरण का गहराता संकटः कारण एवं निवारण

भूमि एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन जो हमें भोजन, ईंधन, चारा एवं लकडी प्रदान करती है। दुर्भाग्यवश भारत में सदियों से खाद्दान्न उत्पादन हेतु भूमि का शोषण किया गया है जो भूमि क्षरण के प्रमुख कारणों में से एक है। भूमि क्षरण के फलस्वरूप उसकी उपजाऊ क्षमता खत्म हो जाती है। जिसके कारण उपजाऊ भूमि बंजर भूमि में तब्दील हो जाती है। क्षरित भूमि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिए बहुत बडी हानि है। भारत में विभिन्न कारणों से भूमि क्षरण की दर में लगातार वृद्धि हो रही है। सिकुडते भूमि संसाधन आज भारत जैसे विकासशील देश के लिए सबसे बडी समस्या है देश में मनुष्य अनुपात मुश्किल से 0.48 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति है जो दुनिया के न्यूनतम अनुपातों में से एक है।

क्षरित भूमि के अन्तर्गत अपरदित भूमि, लवणीय एवं क्षारीय भूमि, जलजमाव से प्रभावित भूमि, खनन गतिविधियों से प्रभावित भूमि विभिन्न कारणों से बंजर भूमि में परिवर्तित हो चुकी है। इसमें लगभग 178 मिलियन हेक्टेयर क्षरित वन भी सम्मिलित है। देश की कुल कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल 144 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें लगभग 56 प्रतिशत गलत कृषि कार्यों के परिणामस्वरूप बेकार या बंजर हो चुकी है। और अब घने वन सिकुडकर कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का केवल 11 प्रतिशत (36.2 मिलियन हे0) रह गये हैं।

वर्तमान में भारत में मृदा अपरदन की दर लगभग 2,600 मिलियन टन प्रतिवर्ष है। देश की लगभग 140 मिलियन हे0 भूमि, जल तथा वायु मृदा अपनदरन से प्रभावित है जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की ऊपरी परत की हानि की दर लगभग 6,000 मिलियन टन प्रतिवर्ष है जिसमें 5.53 मिलियन टन नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटास की मात्रा होती है। भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग एक–चौथाई भाग जल अपरदन से प्रभावित है। देश में सिर्फ जल अपरदन द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 6,000 टन ऊपरी मिट्टी का कटाव होता है। जिसमें पोषक तत्वों की मात्रा की अनुमानित कीमत, 1,000 करोड रूपये से भी से ज्यादा की होती है।

जल द्वारा मृदा अपरदन दक्षिण एवं पूर्वी भारत के लाल एवं लैटराइट मृदा की एक प्रमुख समस्या है जहां मिट्टी के कुल क्षेत्रफल 70 मिलियन हैक्टैयर का लगभग 6.7 मिलियन हैक्टैयर क्षेत्र पहले से ही मृदा

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

अपनदन के चलते बेकार हो चुका है। उत्तरी पूर्वी भारत की लगभग 4.4 मिलियन हैक्टेयर भूमि झूम कृषि के कारण गंभीर भूमि क्षरण से प्रभावित है।

भारत में तीव्र जल अपरदन के कारण लगभग 3.67 मिलियन है0 भूमि बीहड भूमि में तब्दील हो चुकी है। बीहड मुख्यतः उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात राज्य में फैले हैं। यमुना, चम्ब्ल, माही, बेतवा, साबरमती तथा उनकी सहायक नदियां इन राज्यों में भूमि अपनरदन के लिए उत्तरदायी है। एक संरक्षित अनमान के अनुसार भारत में बीहड भूमि पुनरूत्थान न होने के कारण प्रतिवर्ष लगभग 157 करोड रूपये का घाटा हो रहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश एवं राज्स्थान के बीहड क्षेत्रों की अनाज उत्पादन क्षमता तकरीबन 3 मिलियन टन प्रतिवर्ष है।

देश की कुल लवण प्रभावित भूमि का लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्रफल सिंधु गंगा मैदानों के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश, बिहार, दिल्ली, हरियाणा तथा पंजाब राज्यों में वितरण हैं।

वायु अपरदन आमतौर से देश के शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की समस्या है जहां की मिट्टी मुख्यतः बलुई होती है जिसके कारण पेड–पौधे कम संख्या में उगते हैं। या पूर्णतः अनुपस्थित होते है। भारत में वायु अपनरदन से लगभग 50 मिलियन हे. के भूमि प्रभावित है जिसमें से ज्यादातर भाग राजस्थान एवं गुजरात राज्य के अन्तर्गत आते हैं। इन क्षेत्रों में अपरदन के नियन्त्रण में लगभग 3,000 करोड रूपये का खर्च आयेगा।

5.2 भूमि क्षरण के कारण:

जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, शहरीकरण, वनविनाश, अत्यधिक चराई, झूम कृषि तथा खनन गतिविधियाँ भूमि संसाधनों के क्षरण के प्रमुख कारण हैं। इनके अतिरिक्त रासायनिक उर्वरकों एवं नाशिजीनाशकों पर आधारित पारम्परिक कृषि भी भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण है। हरित क्रान्ति के आगमन से कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए रासायनिक खादों, कीटनाशकों तथा शाकनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से न केवल वातावरण प्रदूषित हुआ है, अपितु भूमि की उर्वरा शक्ति बढाने वाले सूक्ष्मजीवों की जनसंख्या में भी लगातार गिरावट दर्ज की गयी है। जिससे मृदा की पैदावार शक्ति में कमी आयी है।

अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों विशेषकर यूरिया के प्रयोग से भूमि अम्लीय हो जाती है। अम्लीय मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे कॉपर तथा जिंक पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की मृदा में आमतौर से कैल्शियम तथा पौटेशियम तत्वों का अभाव होता है। इसलिए इस प्रकार की मृदा में फसल की पैदावार में गिरावट आ जाती है।

रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा संरचना नष्ट हो जाती है। जिससे मृदा के कण एक दूसरे से अलग हो जाते परिणामस्वरूप मृदा अपरदन की दर में तीव्र वृद्धि की सम्भावना बढ जाती है।

कृषि में जल के अत्यधिक प्रयोग से जलजमाव के कारण मृदा की लवणता एवं क्षारीयता में वृद्धि होती है। जिससे उपजाऊ भूमि उसर भूमि में परिवर्तित हो जाती है। सिंचाई जल के कुप्रबन्धन के कारण देश की लगभग 6 मिलियन हैक्टेयर भूमि जल जमाव से प्रभावित है तथा तकरीबन 7 मिलियन है0 भूमि लवणता एवं क्षारीयता से प्रभावित है।

5.3 भूमि क्षरण का निवारण:

भूमि जैसे महत्वपूर्ण संसाधन का क्षरण देश के समक्ष एक गम्भीर समस्या है। अतः इस समस्या का निराकरण समय की सबसे बडी आवश्यकता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो निकट भविष्य में देश में खाद्यान्य उत्पादन की दर में गिरावट होगी परिणामस्वरूप आर्थिक विकासस अवरूद्ध होगा और 125 करोड की आबादी वाले देश भारत में भूख और कुपोषण के चलते मृत्यु दर में अभूतपूर्व बढोत्तरी होगी। यद्यपि 1950 की तुलना में आज देश की कुल खाद्यान्न उत्पादन क्षमता में पांच गुना से ज्यादा वृद्धि हुई है। (लगभग 259 मिलियन टन) ।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

फिर भी बढती जनसंख्या एवं मांग को देखते हुए खाद्यान्न उत्पादन बढाने की आवश्यकता है क्योंकि देश की लगभग 42 करोड आबादी आज भी अत्यन्त ही गरीब होने के कारण भूखमरी एवं कुपोषण की शिकार है। इसलिए उपजाऊ भूमि का संरक्षण तथा क्षरित भूमि का पुनरूत्थान अत्यन्त ही आवश्यक है ताकि देश में खाद्यान्न उत्पादन को और बढाया जा सके जिससे कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था को और सुदृढ किया जा सके।

इसके लिए आवश्यक है कि पारम्परिक कृषि के स्थान पर संपोषित कृषि को अपनाया जाये जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, शाकनाशकों आदि का प्रयोग केवल आवश्यकता पडने पर सीमित मात्रा में होता है। संपोषित कृषि में मृदा की उर्वरा शक्ति की वृद्धि के लिए हरी खाद, गोबर खाद, कम्पोस्ट, केंचुआ खाद, जैविक खाद आदि का उपयोग होता है। जिससे मिट्टी का स्वास्थ्य बना रहता है। परिणामस्वरूप मृदा संरक्षण को बढावा मिलता है। साथ ही क्षरित अथवा बंजर भूमि को वनस्पतियों से आच्छादित कर उसे उपजाऊ बनाना तकनीकी दृष्टि से पिछडे भारत जैसे देश के लिए भूमि पुनरूत्थान की सस्ती एवं उत्तम विधि है। इस प्रकार की भूमि पुनरूत्थान विधि को जैविक पुनरूत्थान विधि के नाम से जाना जाता है।

जल अपरदन से प्रभावित कृषि भूमि का संरक्षण एवं पुनरूत्थान घास की प्रजातियों जैसे दूब (साइनोडान डेक्टिलान), अंजान (सिनक्रस सिलिएटस) तथा मुंज (सैक्रम मंजा) के रोपण से किया जा सकता है। उक्त घास की प्रजातियाँ आमतौर से बहुवर्षीय एवं कठोर प्रवृत्ति की होती है। इनकी जडे मिट्टी के कडों को बांधकर मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होती हैं। घासों के निरन्तर उगने से मृदा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि होती है, जिससे मृदा संरचना में सुधार के साथ साथ उसकी उपजाऊ क्षमता में भी वृद्धि होती है।

देश के शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क में वायु अपरदन एक गम्भीर समस्या है। वायु अपरदन से प्रभावित भूमि को मेंहदी (लावसोनिया एल्बा), कनेर (थीबेटिया नेरीफोलिया), आक (कैलोट्राफिस प्रोसेरा), मदार (कैलोट्रापिस जाईजेण्टिया) अरण्ड (रीसिनस कम्यनिस), बेर (जीजीफस मारिसियाना) , खैर(अकेसिया कटेचू) , सफेद कीकर (अकेसिया ल्यूकाफोलिया) , शीशम(डेलबर्जिया शीशू) , ईमली (टेमरिण्डस इण्डिका)तथा खेजरी(प्रोसोसिप सिनोरिया) जैसे कठोर पौधों की प्रजातियों के रोपण से संरक्षण प्रदान किये जाने की तत्काल आवश्यकता है।

यद्यपि खनन गतिविधयॉ पर्यावरण के दृष्टिकोण से हानिकारक होती हैं परन्तु आर्थिक विकास के लिए अत्यंत ही आवश्यक होती हैं। खनन गतिवधियों के कारण भूमि में जबरदस्त उलटफेर होता है फलस्वरूप नीचे की मृदा जिसमें पोषक तत्वों तथा कार्बनिक पदार्थों का अभाव होता है। ऊपर आ जाती है जबकि इसके विपरीत ऊपर की उपजाऊ मृदा की परत नीचे चली जाती है। इस प्रकार खनन कार्य से प्रभावित भूमि की उपजाऊ क्षमता शून्य हो जाती है।

खनिज सम्पदा सम्पन्न भारत में गतिविधयाँ भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण है। खनन कार्य से अव्यवस्थित भूमि का पुनरूत्थान उस क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली वृक्षों की देसी प्रजातियों से किये जाने की आवश्कता है। जैसे उष्णकटिबंधीय जलवायु के शीशम, करंज, खैर, सागौन, अर्जुन, बहेडा, आंवला, शिरीष, सफेद शिरीष घमार तथा नीम जैसे वृक्षों की प्रजातियाँ जैविक पुनरूत्थान प्रक्रिया के लिए उत्तम होती है।

वृक्षो के अतिरिक्त दीनानाथ एवं चुराट जैसी देसी प्रजाति की घासें भी इस प्रकार की जलवायु के लिए अति उत्तम होती हैं। उपरोक्त वनस्पतियाँ खनन गतिविधयों से अव्यवस्थित भूमि को स्थिरता प्रदान करने के साथ साथ मृदा पुनर्विकास प्रक्रिया में सहायक होती हैं।

नीलहरित शैवाल लवणीय एवं क्षारीय भूमि के पुनरूत्थान में अत्यन्त ही कारगर होते हैं। नीलहरित शैवालों जैसे– नास्टाक, एनाबीना, अलासाइरा, साइटोनीमा, सिलेण्ड्रोस्परमम ग्लियोट्राइकिया, आसैलिटोरिया,

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

ग्लिोयोकैप्सा तथा स्टाइगोनीमा की प्रजातियां आमतौर से लवणीय एवं क्षारीय मृदा की सतह पर आसानी से उगती हैं। जिसके फलस्वरूप न केवल जीवांश पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है अपितृ नीलहिरत शैवालों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण के परिणामस्वरूप नाइट्रोजन की मात्रा में भी पर्याप्त वृद्धि होती है।

जलीय पौधा एजोला पिन्नेटा भी लवणीय तथा क्षारीय भूमि के पुनरूत्थान के लिए उत्तम है। इसके अतिरिक्त नीम, इमली, अर्जुन, करंज, आंवला, सफेद शिरीष, खेजरी, बेर सहतूत, काला सहतूत जैसी उपयोगी वृक्षों की प्रजातियों के रोपण से भी लवणीय एवं क्षारीय भूमि के उद्धार की आवश्कता है। उपर्युक्त वृक्षों की प्रजातियाँ लवणीय एवं क्षारीय भूमि पर सफलतापूर्वक उगती है। तथा अपने मृत अवशेषों जैसे– पत्तियों, टहनियों, फलों आदि से मृदा के भौतिक तथा रासायनिक गुणों को परिवर्तित कर कृषि योग्य बना देती हैं।

जल जमाव से ग्रसित बंजर भूमि का पुनरूत्थान केवल जल निकासी से ही संभव है। जल जमाव की समस्या आमतौर से नहर से सिंचाई वाले क्षेत्रों की समस्या है। जल जमाव से निपटने के लिए आवश्क है कि सिंचाई के दौरान जल का प्रबन्धन ठीक प्रकार से हो साथ ही खेत से अतिरिक्त जल के निकास के लिए नाली की उपयुक्त व्यवस्था हो।

6. निष्कर्ष

किसी भी अनुसंधान की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शोघकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध एंव लेख लघु स्तर से वृहद स्तर पर एवं सामान्य आम जन के मस्तिष्क–पटल पर क्या प्रभाव छोड़ जाता है। प्रस्तुत शोध में **भारत में भूमि क्षरण का गहरता संकट : कारण एवं निवारणः एक भौगोलिक अध्ययन** पर जो विचार उल्लेखित हुए है क्या वह वास्तव में सार्थकता निहित है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का सही आंकलन के लिए यह जरूरी है कि अजलवायवीय कारकों को भी निर्देशों में सम्मलित किया जाए क्योंकि ये कारक भी भू और वायुमण्डल के बीच की पारस्परिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। निर्देशों के विभिन्न जनकीय पहलुओं और यथार्थ विश्व की जटिलताओं एवं स्थानीय तथा क्षेत्रीय स्थितियों को समुचित रूप से निर्देशों में निगमित किया जाये। इसके अतिरिक्त इस विधा में कुछ मूलभूत और व्यवहारिक शोधों की जरूरत है जो निम्न विषयों पर प्रकाशा डाल सके– जलविज्ञानीय प्रक्रियाओं और भू तथा वायुमण्डल के बीच की पारस्परिक क्रियाओं को और अधिक भौतिकीय रूप में समझना, जलवायु और जलविज्ञान, स्थानिक और सामयिक पैमाना, जलवायु और भौतिकीय भूगोलिक परिवर्तन का क्षेत्रीय स्तर पर वृहद् अध्ययन एवं परिवर्तित जलवायु में जल संसाधनों के समुचित योजनीकरण, विकास एवं प्रबन्धन इन सभी पहलुओं पर क्षेत्रीय अध्ययन के लिए समुचित विधियां विकसीत करना।

सिकुडते भूमि संसाधन आज देश के लिए एक गंभीर समस्या है। भूमि क्षरण का प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पडेगा जिससे न सिर्फ भूखमरी और कुपोषण जैसी समस्याओं में वृद्धि होगी अपितु कृषि पर आधारित देश की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पडेगा। अतः देश को भुखमरी और कुपोषण से बचाने के साथ साथ अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए उपजाऊ भूमि का संरक्षण एवं भूमि का पुनरूत्थान अति आवश्यक है भूमि संरक्षण के लिए पारम्परिक कृषि के स्थान पर संपोषित कृषि को अपनाना आज समय की सबसे बडी आवश्यकता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April- 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. थापलियाल, बी. और कुलश्रेष्ठ, एस.एम 1991 क्लाइमेट चंजेज एण्ड ट्रेण्डस ओभर इंडिया, मौसम, 42, 333–338।
2. मैहरोत्रा, आर. दिव्या और केसरी, ए. के. 1995 इमपैक्ट एसेसमेन्ट स्टेडीज, छप्, प्रतिवेदन, ै ; ।त्द्ध.
3. शोध प्रविधिरू डॉ० हरिश्चंद्र वर्माय हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला (2011)।
4. सामाजिक अनुसंधानरू राम आहूजाय रावत पब्लिकेशन, जयपुर (2010)।
5. अनुसंधान परिचयरू पारसनाथ राय, सी० पी० रायय लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, प्र० सं० (1973)।
6. शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीरू विपिन अस्थाना, विजया श्रीवास्तव, निधि अस्थानाय अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा (2013)।
7. सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसंधानरू मानसी शर्माय वाईकिंग बुक्स, जयपुर (2012)।
8. डॉ. श्याम धर सिंहः वैज्ञानिक सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण के मूल तत्व, पृ 148।
9. आर. एल. एकॉफ : सामाजिक शोध–प्ररचना, प्रा. 5।
10. बूस. डब्ल्यू. टकमैन, 'कन्डक्टिंग इजूकेशनल रिसर्च', न्यूयार्क हरकोर्ट ब्रेस जोनेवोविच, 1972।
11. ई.ए.ए. बोगार्डसः 'सोसलोजी' 1954 प्र. 548।
12. डॉ. सिंहः पूर्वोद्धरित, पृ. 446।
13. डॉ. रवीन्द्र नाथ मुखर्जीः सामाजिक शोध व सांख्यिकी, पृ. 140।